

किताब घर
नयी दिल्ली-110002

प्यारे मुचकुन्द को

रमेशचन्द्र शाह

ISBN—81-7016 178 9

रमेशचन्द्र शाह

प्रकाशक
किताबघर
24, असारी रोड, दरियागज
नयी दिल्ली 110002

प्रथम सस्करण
1994

आवरण
चेतनदास

मूल्य
चालीस रुपये

मुद्रक
चोपडा प्रिंटर्स
शाहदरा दिल्ली-110032

PYARE MUCHKUND KO (Hindi Poetry)
by Ramesh Chandra Shah
Price Rs 40 00

गुरुस्थानीय
कवि-चिंतक विजयदेव नारायण साही की
स्मृति को

' तुम उन्हे कभी न समझ सकोगे
कि हम होड मे न पडने वाले लोग
सचमुच कितने खतरनाक हैं '

कविता-क्रम

अधेड़ जंगल मे

अधेड़ जगल मे

(1)

किसका है यह घडा
नदी यह कैसी ?
कोई दिखता नही
महज परछाइ

उलटा लटका जाल
और
सन्नाटा !
चँवर डुलाता जगल
किसका
किसको ?

(2)

बाहर खुली सडक है
बन्द हवा की
भीतर ट्रक घडघडा रहा है
कब से

डरा हुआ नागरिक
निर्मति से डर की
टोह रहा है किसकी
अनुपस्थिति को ?

मृगया का यह भाग
नही पुरखो का।

(3)

सन्नाटा यह
बिंधा अचानक
किसके गूँगेपन से ?

किसकी है यह नोक
नियति यह
किसकी ?

कब से भीतर कैद
छटपटाती बाहर आने को
इस दुरंत दुविधा में
बाहर भीतर
सन्नाटे की नदी
सिहरता
मृग-जल

(4)

एक टेक सी
जिज्ञासा थी
केवल

उलझा करता-करता आखिर
अपनी ही उलझन का

आ पहुँचा मैं
कहाँ अचानक

इस अघेड जंगल में
?

शब्द, बताओ

शब्द, बताओ
कहना क्या है ?

शब्द, बताओ
गहना क्या है ?

मेरा तुम्हें
तुम्हारा मुझे
उलहना क्या है ?

शब्द बताओ
कहना क्यों है ?
शब्द, बताओ
सहना क्यों है ?

तुमने हमको
हमने तुमको
पहना क्यों है ?

फिलहाल

फूटा एक रग
अधेरे का
अँधेरे मे

रात भर सोई सडक
उठती दीवार सी
खोलती खिडकी एक
देखती अँधेरे मे
रँगा हुआ आसमान

रगो की हलचल थी सुबह कभी
रगो की नीद रात
सपने दिखाती थी रग के
रग है अभी तो
फिलहाल यह अँधेरा

सडक की आहट पर
टूटता हुआ आसमान
छूटता हुआ घर
टूटना नही है यह
छूटना नही है सिफ
हल्का पड जाना है
रगो की तरह

लौटना है घर आसमान को
लौटती हैं सडकें
सडको को लपेट कर
लौटती एक दीवार ओढकर सडकें

गुम हो जाती
अपने अँधेरे मे

लौटते हैं रग फिर
लौटता अँधेरा

लौटते हैं तारे

लौटते अनन्त घर
अनन्त आसमान मे

चाक पर

चाक पर चढा हुआ आस-पास
उठता है धीरे से
उठता एक कलश
एक अन्तरिक्ष
उठती है गगा की लहरें
थपकाती हुई
बुखार मे जलते एक नगर को

कब से इन ठीकरो पर
दे रहा पहरा मैं
पढने मे असमर्थ चिह्न ये
आँधियो की तरह मुझे रौंदती गुजर गई
कितनी सेनाएँ
सदियो की रेत मे
सुरक्षित नीद मुझे
सपने दिखा जाती

सधे हुए हाथो के
चाक के

लय

गाढी होती साझ
गढे के जल मे।

घर जाने को खडी
इकट्ठी
गायें।

अलग-थलग भी एक साथ
पूछो का
उठना गिरना
सँवलाते आकाश फलक पर।

खडी देखती चकित हवा भी
एक अनोखी लय मे अंकित
अपनी
आतुरताएँ।

तोते

उग रहा रक्त
उगते उगते
चुग रहा रक्त

फल रहा रक्त
फलते-फलते
चल रहा रक्त

दो पहर पेड
खिडकी पर खडे-खडे
सहसा

रुक गया वक्त

खाली आदमी

खाली आदमी
खयाली आदमी
बवाली आदमी

खाली आदमी को
दुनिया भरती है रोज़
खाली आदमी को
दुनिया चरती है रोज़

किसके लिए भरता है
अनछुआ, अनदेखा
खाली आदमी, खयाली आदमी
कैसे रिस जाता है
कैसे निचुड जाता है
बैठे ठाले ही
कैसे उड जाता है
खाली आदमी, खयाली आदमी

दुनिया के हाथों
भरे जाने को
फिर फिर
?

फव्वारा

जल उठता है
जल
गिरता है।

जैसे आतिश का अनार हो
जलता अपना ही अधार हो
फिर भी, फिर भी
बहुत दिनों की झुकी पीठ से
उतरा मानो अभी भार हो

जल उठता है
जल
गिरता है।

जल का ही यह वृक्ष
और
जल की ही छाया।

जल का छल ही जैसे मुझको
जल का बल हो,
बावजूद मेरे—
भीतर यह
कहाँ-कहाँ का जल घिर आया

जल उठता है
जल गिरता है।

पहेली

कुछ भी नही
इसी से कुछ-कुछ
सपना नहीं
न ही, वह सचमुच

ना वह निजन
न ही नगर है
ना वह खंडहर
न ही लहर है

सब नावो की
ठाँव कभी वह
तारो की भी
छाँव कभी वह

था अगद का
पाँव कभी वह
दिवालिये का
दाँव अभी वह

मुनीम की चिंता

एक एक कर
सारे अच्छे लोग जा रहे
जिन पर किया भरोसा हमने
और, जिन्होने
हम पर।

अच्छा हो मरने से पहले
मैं मुनीम इस उजडे घर का
सील गए इन खातो को
कुछ धूप दिखा दू !

गो कि मुझे अब
नहीं सूझता कुछ भी,
आँखें जाती रही
इन्ही पर आँख गडाए,

गोकि, मुझे मालूम नही
सच कैसा दिखता है अब !

फिर भी, फिर भी
करना ही होगा कुछ बन्दोबस्त
मुझे अब इन बहियो का

कल के ये आँकडे
किसी को
दीखें तो कल !

बहुरूपिया

कभी छला, कभी पगला
कभी सिपाही, कभी जोगी   वह
डोलता अपनी धुन में मस्त
न इधर उधर झाँकता
न किसी से कुछ मागता

पता नही पिता को उससे क्यो था इतना लगाव !
मुझे अच्छा नहीं लगता उनका
इतना मुह लगाना उसे ।
इस कदर चहकना बहकना उसके साथ

"अरे ! मायाराणी तो अपरम्पार ठैरीं लला,
छूटे नही नारद तक "

"हमारे नारद तो तुम्ही ठरे म्हाराज, बस
एक झलक दिखा देते मायाराणी की भी ! "

"राम राम ! तुम्हारी तो मति हरण हुई, लला
माँ का स्वाँग धर के
किस तर्क से मिलेगी ठौर ! "

तुम नही बताओगे, तो और कौन बताएगा
भेद मायाराणी का !"

"भेन वेद कुछ नही, लला, दुनिया भर के कौतुक सब
ठैरे इसी घट मे, अरे !
कर लो जो करना है, बण लो, जो बणना है
किसने देखा ठैरा लला, दुहरा जनम ! "

"एक जनम काटना ही भारी ठैरा, म्हाराज।"

"हद्द हो गई हो लला,
अभी कहाँ देखा तुमने असल ठेठर दुनिया का!
सौ जनम माँगू मैं तो, मिले अगर माँगे से
चलता हूँ, अच्छा, अब
रस्ता देखती होगी मेरी घरवाली बालगोपाल

"क्यों नहीं! क्यों नहीं!" खूब खिलखिलाते पिता—
रुपया एक चुपके से सरकाते खीसे में
पता था सबको—उसका कोई घरबार नहीं
'न जोरू न जाँता, अल्लाह मियाँ से नाता'
खुद उसके मुख से सुना था मैंने कितनी बार?
कहता था कुढ़कर मैं—उसके जाने के बाद
'छी छी! यह आदमी है क्या है?"

अब नहीं कहता मैं।
कौन है मुझसे बड़ा बहुरूपिया दुनिया में?
'कौन हूँ'—टेरते टेरते —
देहरी देहरी डोलते
बूढ़ा हो चला हूँ अब
किसी ने आज तक पूछा नहीं मुझसे
क्या भटक रहे हो यहाँ?
कोई नहीं चिढ़ता मुझसे
कोई नहीं हँसता मेरे करतबों पर

कोई नहीं पुकारता
कोई नहीं बुलाता अपने पास मुझे
पिता की तरह

अब कहाँ

कविता के भीतर ही कविता से मुख मोड़े
रहे किसे तुम टेर ? यहाँ रोड़े ही रोड़े
बीन-बीन कर तुम्हें पाटना है भवसागर
भरा घड़ा अब कहाँ प्यास-पानी को जोड़े ?

जिस घट पैठो वहीं मिलेगा तुम्हें सारथी,
सब हैं गोताखोर यहाँ, अब सब पारखी।
बदल चुका ऋतुचक्र होड़ भी जरूरतों की,
पिछड़ गई गाथा किसान की औ कुम्हार की।

गति से प्रथम सुरक्षा ? वह तो रीत पुरानी।
करो दोस्ती दुर्घटनाओं से अनजानी।
चकराते हैं धरा व्योम सब तुम्हें घेरने,
तुम्हीं एक हो, और तुम्हारी ही यह मानी।

शून्य शिखर वह खड़ा और मुँह तकते तापस !
पार करो सब दूर, और फिर लौटो वापस।

अरे आदमी ये !

आते-आते

मोड़—दिखा था
महागत्त वह
एक झलक भर

नहीं दिखा फिर
कुछ भी

एक चीर सी सड़क
लिपटती
आँखें,

खुल जाएँ फिर
शायद
अगले किसी मोड़ पर !

मुड़ जाएगा मगर
मोड़ फिर
आते आते।

डाल से फिर

डाल से फिर
आ जुड़ी चिड़िया अचानक
आ जुड़े फिर
रंग।

नए चूने की चमक से
नए काजल की गमक से
खूब काले, खूब धौले
पंख।

जुड़े फिर से
रात-दिन ज्यों
जुड़ गई चिड़िया।

कहाँ देखे थे कभी ये रंग ?
कहाँ देखी थी यही चिड़िया ?

सोच में ही
उड़ गई
चिड़िया।

अरे आदमी ये

अरे, आदमी ये—कवी !
अरे, आदमी ये—नबी !

अरे, आदमी ये
अरे, ये महा मतलबी !

अरे, ये किसी का
हुआ है ? सुना क्या कभी ?

अरे, जो किसी का
अरे, जो खुदी का
हुआ है न होगा

अरे ! हाँ, अरे रे !
तभी !

अगीत

रात दूभर
प्रात दूभर

कह रही मछली लहर से

साथ दूभर
बात दूभर

खोह में सब आंख मीचे
कौन अब किसका कहां तक
हाथ भीचे ?

सांस को ही सास दूभर ।
रात दूभर
प्रात दूभर

लिख रही दीवार आंखर
बांचती दीवार आंखर
अब कहां नीचे धरा है
अब कहां आकाश ऊपर

रात दूभर
प्रात दूभर

सांस को
हर सांस दूभर ।

शाम ढले

दिन भर खेला रंग
धूल ने

शाम ढले
जैसे ही बैठी
सुस्ताने को

टूट पड़ा फिर
यहीं, हाँ यहाँ आसमान
घहराकर।

धूल चकित है
अरे! अरे! यह आसमान तो
यहीं छुपा था

यहीं
इसी कीचड़ में

मरणोपरात

घरो के बीचोबीच
घरो से छिटका हुआ
एक घर

शोर से छना हुआ
रवे सा ढला हुआ
एक स्वर

चलती फिरती देहरी
चलती फिरती दीवारें
चलता फिरता आगन

वह अब नहीं है, महज
शब्दो का घर है एक
किराए पै उठा हुआ

पुख्ता, भरोसेमद
लगता उन सबको
जो रहते थे खोह मे

उसी से कतराते
उसी के आसपास
उसी की टोह में

गुणी

दिखते नहीं नगर-सीमा में
वे काले लंगूर इन दिनों
'गुणी' कहा करते थे जिनको

घर की बोली में हाँ,
उनका यही नाम था।

सीखा तो और भी बहुत-कुछ
था बचपन में

पर
इतना ही
याद रह गया।

बदला

चट्टानो के बीच
दौड़ती नदी के लिए
खूब जगह है।

पहले नदी नहीं थी
पहले
चट्टानें थीं।

तो इससे क्या।

अच्छा है, बैठे-ठाले कुछ
काम मिल गया।

जगह-बेजगह
राह रोककर
रूप दिया जिसको
बदले मे

स्वय उसी का
नाम मिल गया।

जन-कवि की आत्म-स्वीकृति

औरो से घणा करो
अपनो से प्रेम
निभता ही चला गया
बरसो तक नेम

कहने को दानी था
फिर भी अभिमानी था
रक्खा कुछ बचा नही
फिर भी कुछ रचा नहीं

मेरा जग, और यहाँ होने का मतलब
सच पूछो तो,
पचा नही।

छानी य दर दर की खाक भले न गे पाँव
डाली यू कभी-कभी मुश्किल मे जान भी
कहने को झोली मे तुक भी है, तान भी
किंचित स्वर ज्ञान भी,

गा नहीं सका फिर भी
कभी कठ खोलकर।
टूटा तो बहुत बार
जुड पाया नहीं कभी
मरमी सा बोलकर।

एक अनवरत विदा

बीचोबीच हमारे रहता
बीचोबीच हमारे बहता
अपनी नही, वचन हमारी
सहता-कहता
था वह भी ससार कुछ न कुछ

चला गया, तो चला गया
वह सदानीर भी
सचमुच ?

कहना था जो, कहा
कहन के आर-पार भी
सहना था जो, सहा
सहन के आर-पार भी

बहना ही रहना था
रहना ही बहना था
उसका, वह तो
एक अनवरत विदा
सदा ही

सूना है ससार नदी का
दूना अब आभार नदी का
खुली दिशाएँ देख काँपता
गाढा पडता अन्धकार यह

आज सुबह
हर सुबह

लटके-झटके

टहनी पर टिके हुए हो
लगता, ज्यों सिके हुए हो।
कहनी हो या अनकहनी
पर कुछ तो लिखे हुए हो।

जिसके भी लिखे हुए हो,
जिस पर भी टिके हुए हो,
कम से कम नहीं अभी तक
लगता तुम बिके हुए हो।

ऊपर से सिके हुए हो,
नीचे से सिंके हुए हो,
फिर भी लगता, जैसे हम
वैसे तुम फिके हुए हो।

तुम भी खजूर पर अटके,
हम भी खजूर पर अटके,
हम दोनो देख रहे हैं,
दुनिया के लटके झटके।

कौन कहता !

अधूरा हो भले
और अधम कही

आदमी यह आदमी का
भ्रम सही

कौन कहता
आदमी मे
दम नहीं !

धूल ही चाहे न हो सच की कमाई
धूल भी सच की
उडी हो कम नहीं

आदमी की आँख
केवल अधडो से
नम नहीं

परिदृश्य

गोद लिए सन्नाटा
देहरी मूक
अकेला मेला

धूप
धूल तारों की

पता नहीं यह किसका घर है
किसका खँडहर

लहर ले रहा है समुद्र
पत्थर का

बस इतना ही जुड़ा
और इतना ही बिखरा
झूल रहा हूँ तार-तार में
आर पार अपने ही

चौतरफा बिखरे आलों से
झाँक रहा है बचपन

आखिरी दाँव

अन्न-जल

तुम मेरे एकान्त
तुम्हीं हो बस्ती मेरी
तुम्हीं अन्न-जल

कहाँ लौट जाने को कहते हो अब निष्ठुर ?

मुझे लगाकर गले
भला किसने छीनी थी
जननी जन्मभूमि किष्किन्धा
भूल गए तुम ?

यह क्षण मेरा मरण
और, था पुनर्जन्म प्रभु
तुम्हें था देखा मैंने ।
नाम तुम्हारा पूछा था तुमसे ही ।

और, सुनी थी सराहना
अपनी वाणी की ।
वह क्या केवल वाणी ही थी
और कुछ नहीं ?

और आज का यह गूंगापन
मात्र व्याकरण की विस्मृति है
और कुछ नहीं ?

मैं अवाक हूँ, महाराज,
यह तुमने छीना, छला
मुझी को मुझसे

सचमुच
आज
दूसरी बार

यह कैसा वरदान
तुम्हारी, या मेरी
यह विडम्बना,
प्रभु !

जहाँ तुम्हारी कथा
रहूँ मैं वही आज से
सदा-सदा को
बँधा दूसरे के शब्दो से
सचमुच स्वामी ?

मैं अवाक हूँ
आज इसी क्षण से मैं
सचमुच
नहीं कहीं का।

शिरोधाय वरदान तुम्हारा।
अब मेरा अन्न-जल
कथा है

और
कथा हो
तुम भी।

आँखें मलते हुए

आँखें मलते हुए पहाड़ उठे
अलसाये
चीड़ों ने करवट बदली
किरनों ने लुके छिपे
शिखरों की समिधा छू उकसा दी

पल में निर्धूम पीत-रक्तिम शिखाओं में
सुलग उठी क्षितिज वेदिकाएँ

सूर्योदय ! किरनफूल
प्राची की अँजुरी बिखरी
शीश उठा विहँसा व्योम
धरती उजलाई
झूम उठी चीड़ों की सघन पाँत
स्वागत ऋचाओं में
कूज उठे नीड़ों के आरण्यक
सूर्योदयी प्रकृति का प्रार्थना तरंगित मौन
निहारती मन्द स्मित अपलक
हिमालय की वत्सल
ऋषि दृष्टि

होड

कार्तिकेय से होड भला क्या लम्बोदर की ।
कलियुग के ऋषि ने, लो, आखिर भेद उघाडा
कटता नहीं कभी भी कारावास गर्भ का
क्या होगा दुहरा कर आखिर उस चक्कर को
जिससे यो भी कभी नहीं छुटकारा है जीते-जी

कार्तिकेय से होड भला क्या लम्बोदर की !

ऐसी प्रदक्षिणा से तो अच्छा था
वे बगटूट भागते
गिरते पडते कैसे भी
कुछ कोस नापते
रह जाते फिर, चाहे, बहुत-बहुत पीछे ही

कार्तिकेय से होड भला क्या लम्बोदर की !

माना हमने थे मनुष्य से थोडे से कम
या कि, अधिक ही
माना हमने ब्रह्मा और व्यास के भी थे
बहुत निकट थे
स्मरण शक्ति मे बहुत विकट थे
फिर भी, आखिर, थे तो वे
दोनो के आशुलिपिक ही

कार्तिकेय से होड भला क्या लम्बोदर की !

लो, समझे थे सचमुच ही परमार्थ जिसे हम
और देवताओ का अच्छा खासा प्रहसन
किसने सोचा था, वह आखिर
निकलेगी यू निपट त्रासदी

कार्तिकेय से होड भला क्या लम्बोदर की !

घमासान

सचमुच के वादे
सचमुच के इरादे
मचा हुआ सचमुच ही
सचमुच का घमासान

क्या होगा सच का
जो मचता नही है
क्या होगा सच का
जो बचता नही है

सच, जो फिलहाल
न मकान है, न मचान
सच, जो फिलहाल
सिर्फ घमासान, घमासान

क्या होगा सच का
जो पचता नही
बचने वाले को ?

क्या होगा सच का
जो रचता है खुद
रचने वाले को ?

अब भी

पीठ गल गई मगर अभी
जिन्दा है आरुणि

किसका है यह खेल, जहाँ बोए अनन्त, को
घेर रहा दुःस्वप्न घोर
आसन्न प्रलय का ?

सुनो गुनो यह पाठ
अजाने-जाने भय का

खट्टा, मीठा, तीता
सब कुछ बिना बताए बीता
जितना जिया, अरे, उतना ही
लगता जीवन रीता

हँसो, उठाओ रीती गागर
बची हुई आवाजें अब भी

भय की यह घनघोर
अँधेरी
अन्तलय भी

यही समय है

यही समय है
दो टाँगो पर खड़ा धर्म
बन जाय कसौटी धर्मराज की
इससे बड़ा सगुन क्या होगा ?

अरे, सत्य से बड़ा जुआड़ी
भला कौन है ?
जो सब कुछ को दाँव लगा दे

यह युगान्त है—कान लगाकर सुनो पार्थ, तुम
अगले युग की आहट
अपने मेरे बीच यहीं पर
हो जाने दो सब कुछ की
सब कुछ से ही टक्कराहट

धर्मक्षेत्र है कुरुक्षेत्र यह
नारायण की कृपा नहीं, नर,
अभिलाषा है
तेरा जीवन रथ ढोने की
वह सब कुछ जो तू है
वह होने की

हाँ, मुझको है स्मरण, यही पर
तुझे कहा था मैंने—
तेरे भले बुरे कर्मों से
मेरा कुछ भी लेना-देना नहीं'

देख ले
अभी अभी देखा है तूने

मेरा डिगना
अडिग पितामह के प्रहार के सम्मुख ।

आगे भी देखेगा, निश्चय
तू अपनी परछाईं मुझमे
आएगा जब सूर्यपुत्र यह

छुट्टी हुई, चलूं अब अपना खेल समेटूं
तुझे अभी रुकना है।

मेरी अनुपस्थिति के संग-संग
तुझे न जाने
कितनी कितनी दूर अभी चलना है।

यह प्रभासपट्टन अब मेरा कुरुक्षेत्र है
पानी पर है लिखी द्वारका
छुट्टी हुई, चलूं अब अपना
खेल समेटूं

तुझे अभी
रुकना है।

युगान्त

मुझे नही है
तो इससे क्या ?
सबको ही आशा है मुझसे ।

यह मेरा दु स्वप्न ! अयोध्या
किसने सोचा था
हारूँगा यहाँ अन्तत

ऋष्यमूक साक्षी हो—साक्षी
तात विभीषण की लका भी
लडने लायक वही एक था ।

युद्ध नही था, कविता थी वह
अब तो शेष
प्रजा है मैं हूँ ।

विदा ले चुका मेरा वह विश्वास मुझी पर
जो अभिन्न था पवन-पुत्र सा
वैदेही सा ।

क्रुद्ध हुआ था जब समुद्र पर
मैं, तब कसा
दौडा आया था सिर के बल !

अब
पृथ्वी पर कोप
एक प्रहसन ही होगा ।

देख रहा हूँ
मैं नाटक का अन्त

अभी से—
जिसे खेलना ही होगा
पर
मुझे अन्त तक ।

न्याय नहीं कर सकते ये नागरिक
माँग कर सकते केवल
रामराज्य की ।

साक्षी होगा
पहला कवि ही
इस वियोग का ।

अवतार

चीख चीख कर जंगल सारा
नाहक झूठा किया।

नहीं मिला अवलम्ब
नहीं मिलना था
झूठे अभिप्राय को।

रटे रटाए रस्ते से
आना है उसको
किसने तुमसे कहा ?

ठीक रहा—लगता है सब कुछ यहाँ
महज मेरे आने से
सब कुछ गड़बड़ हुआ।

युधिष्ठिर

"तुझे सुई भर जगह न दूंगा
कहता है दुर्योधन
हर बस्ती मे आग लगाता
फिरता है दुर्योधन

बदले का सपना वह कब तक
टुकडो पर पलना है?
यह अज्ञातवास कितने दिन
और अभी चलना है?

नाच गा रहे अन्तपुर में
योद्धा पार्थ सरीखे
क्षोभ सत्त्व को बधक रखना
कोई हमसे सीखे।

कहाँ अरे, वह सपना जिसने
पुरखो तक को तारा!
कहाँ सत्य यह जिसने हमको
लगातार है मारा!"

"जगा हुआ हूँ मैं जिस सच मे
उसे छोड कर खाली
सपने की भी आज तुम्हारे
कौन करे रखवाली!

जीवन स्वयं गीत है, जिस दिन
यह पहचान सकोगे
मेरे इस निराश जीवन को
अपना मान सकोगे

भूत और भावी तक कुछ-कुछ
मैंने जान लिया है
सुयोधन पर नहीं टलेगा
यह पहचान लिया है"

मांग

"मन चगा तो   "
नही पितामह, नहीं चाहिए हमे
कठौती की वह गगा ।

काठ हो चुके हमीं
यही सब सुनते-सुनते ।

हमे चाहिए गगा
हां, सचमुच की गगा
उससे कम कुछ नही
पितामह !

जिसने
तुम्हें
रचा था ।

मर्यादा

पद की मर्यादा में
रहो रहते ही तो
लुप्त हुए सद्गुण

अरे !   तो
हो जाने दो ।
जिसे चाहिए यहाँ परम, पद
किसने देखा ?

कुछ तो मर्यादा होगी ही
यहाँ,
देखने की भी ?

प्यारे मुचकुन्द को

अच्छा लगता है मुझे कभी-कभी
अपने निराले से नीचे उतरना
और खेलना आँगन में
मनुष्य के

सतजुग मे, मगर यही मुश्किल था
मजा नहीं आया था—
मुझे खूब याद है—
पटखनी खिलाने मे एक मूर्ख दैत्य को
आधे अँधेरे और आधे उजाले मे

उससे कहीं बेहतर था
डंडा फटकारना मसान मे
और, देखना
तार-तार होते हुए
ममता की सच्चाई और
सच्चाई की ममता को

छोटा सा युग यह भी
कितना पसर गया
मेरी बेकारी मे!

उतरूँ क्या
नीचे अब ?
कैसे मगर ?

हाँ, वह युगान्त था
यह भी
युगान्त है क्या ?

पता नहीं चलता कुछ
भूल ही गया हूँ मैं
कुल कितनी बातें
लगी थीं बालपन की

प्यारे मुचकुन्द को
नींद की गुफा से सचमुच
बाहर निकालने को

मूर्तिभजक

"एक है वह ।
क्या जरूरत है बहुत,से देवताओ की ?"

"तुम्हें किसने बताया ?"

' उसी ने
उस 'एक' ने
जिसने चुना है खास हमको
हमीं हैं उसकी प्रजा ।"

"प्रजा तो हम भी उसी की हैं, बिरादर !
देवता भी ये हमारे
उसी के हैं
तुम्हारे भी "

"बस करो ।"

"मजा आता है उसे
ससार होने में।
कर चुके हो दिग्विजय तुम
पडे रहने दो हमारे देवताओ को
हमें भी
एक कोने मे ।'

"नही ! बिलकुल नहीं !
केवल 'एक' उसको छोडकर
नहीं कुछ भी पूज्य हो सकता यहाँ
तुम कर रहे भाडी नकल यह
सत्य से मुख मोड कर ।"

'विष्णु भाई !
भला हम-तुम
मूर्तियां ही नहीं,
तो, फिर,
और क्या हैं ?

छामकर तुमको
नहीं अपराध यदि उसने किया है
तो, हमीं क्या पात्र हों
उसकी घृणा के
या तुम्हारी ?

और फिर हम
मूर्तियों को
बनाना ही नहीं केवल
गिराना भी जानते हैं

जबकि, तुम तो
गिराना भी नहीं केवल
ढहाना भर जानते हो''

'तो वही हो।
जानने या पूजने लायक
वही है एक
जो
अपनी बनाई सृष्टि में
रहता नहीं,
किसी दूजे को कभी
सहता नहीं।

उसी का आदेश है—
हम क्या करें ! —

उसी का आदेश है—
घुसपैठिये
खाली करें

सबद निरन्तर

घिरने को आकाश
और
गिरने को धरती।

या फिर देहरी लाँघ
रमा धूनी बीहड़ मे
रहे तोड़ते हम
अनन्त की परती।

माँग माँग कर हमने भी
माँगा क्या आखिर
सूनेपन का
एक घरेलू मन्दिर ?

लाँघ-लाँघ कर भी हमने
क्या लाँघा आखिर
यही लौटना
फिर फिर ?

इससे तो अच्छे थे वे, जो
ढोने को अभिशाप
तोड़ने को यह धरती
आए।

रहे यहाँ पर जितने दिन भी
भरमाए
भर पाए।

होने से पहले भी शायद होनी कोई
होने के भी बाद
बची रह गई
एक अनहोनी।
नहीं हुआ कुछ—लगता अब तो यही
सेमल रहा निरन्तर
जीना यह जीवन से
आँख मिचौनी।

नहीं, भरम ही सही
भरम भी,
जैसा टूटे-फूटे,
खुले रहें ये द्वार, जहाँ जो
चाहे जैसे लूटे।

बसी उनसे होड़ हमारी
शरणार्थी जो बने
आततायी अनन्त के।

शरणागति यह, अरे
तथागत की
हमसे
क्यों
छूटे ?

सम्बन्ध

तुम हो मेरे अथ
और मैं
शब्द तुम्हारा

तुम दो शब्द
और मैं ढूंढू
अथ
तुम्हारा

आखिरी दाँव

[दो खण्डों मे समाप्य एक लबी कविता]

खण्ड एक अक्षय पात्र

शासन अखण्ड यहाँ चक्रवर्ती हिम का
पृथ्वी पर इससे अधिक उजली और जीवित समाधि
तुमने कहीं देखी है ?

किस अक्षय पात्र के
अधे अतलान्त मे
तिनके सा अटका वह
तुम्हारी आर्ति की प्रतीक्षा कर रहा है

मैं जम रही हूँ कि पिघल रही हूँ
सोई हू या जागी ?
दिन है कि रात यह ?   जल है कि थल
आकाश
   या
      पाताल ?

कौन था जो थामे था मेरा हाथ अभी-अभी
क्या हुआ अचानक यह
अधकार चौंध भरा

पाँव तले पृथ्वी को
क्या हो रहा है यह ?

किसने पुकारा किसे
यहाँ इस खोखल मे
किसका स्वर गूज रहा ?

मैंने सुना था कभी
जब भी ऐसा होता है
तुम्हारी उपस्थिति मे ही होता है
तुम भी तब पुरुषोत्तम का चोला उतार कर
निहग साक्षी की
उसी पुरानी भूमिका मे वापस लौट जाते हो
जो लोगो के कथनानुसार
तुम्हारी असली भूमिका है

मुझे नही मालूम—सुनी सुनाई बात है यह
बताओ तो सही मुझे, अब भी यदि साक्षी हो
ऐसा ही खुला था खडह
तब भी तुम्हारी आँखो मे ?

तब भी क्या इसी तरह
ऐसा ही पटाक्षेप
हुआ था सब कुछ पर चक्रवर्ती हिम का ?

स्वर्गारोहण क्या इसी को कहते हैं
कहाँ हैं पथा के पुत्र
कहाँ है तुम्हारा वह भक्त और सखा पार्थ ?
कहाँ है अग्रज वह—हम सबका नेता
और तुम्हारे स्थितप्रज्ञ की
चलती फिरती परिभाषा ?

पथ्वी के फटने पर
कुछ तो शब्द होता होगा
यह कैसा नाटक है—नि शब्द नि स्पन्द
क्या तुम इसे सुन रहे हो ?

[illegible]
एक भी चिह्न [illegible] नहीं

कहीं ऐसा तो नहीं
यहाँ भी [illegible]
[illegible]
[illegible] तुम्हें [illegible]
और [illegible]
आ पहुँचे [illegible] नहीं

क्या हुआ ? कुछ तो कहो
तुम तो [illegible], [illegible]
नगरों को भी लाँघ चुके थे

यह भी सुना था
कि, स्वर्ग तुम्हें नहीं ऊँचा
स्वर्ग से नरक और फिर नरक से स्वर्ग को
यात्रा वह कैसी रही

कुछ तो बताओ मुझे
अपनी अर्द्धांगिनी को
शताब्दियों के आर-पार छिपे हुए मुझसे तुम
क्या चाहते हो आखिर
क्या है मेरे पास अब
जो मैं तुम्हें सौंप दूँ
और अपने साथ साथ
तुम्हें भी मुक्त कर सकूँ
मैं तुम्हारी मुक्ति ।
कैसी विडम्बना है.

[illegible]
हँसी नहीं
[illegible]
[illegible]
[illegible] नहीं

[illegible]

किसने पुकारा किसे
यहाँ इस खोखल में
किसका स्वर गूँज रहा ?

मैंने सुना था कभी
जब भी ऐसा होता है
तुम्हारी उपस्थिति में ही होता है
तुम भी तब पुरुषोत्तम का चोला उतार कर
निहंग साक्षी की
उसी पुरानी भूमिका में वापस लौट आते हो
जो लोगों के कथनानुसार
तुम्हारी असली भूमिका है

मुझे नहीं मालूम—सुनी-सुनाई बात है यह
बताओ तो सही मुझे, तब भी यदि साक्षी हो
ऐसा ही खला था खड्ड
तब भी तुम्हारी आँखों में ?

तब भी क्या इसी तरह
ऐसा ही पटाक्षेप
हुआ था सब कुछ पर चक्रवर्ती हिम का ?

स्वर्गारोहण क्या इसी को कहते हैं
कहाँ हैं पृथा के पुत्र
कहाँ है तुम्हारा वह भक्त और सखा पार्थ ?
कहाँ है अग्रज वह—हम सबका नेता
और तुम्हारे स्थितप्रज्ञ की
चलती फिरती परिभाषा ?

पर्दा के उठने पर
कुछ तो स्पन्दन होता होगा
यह कैसा नाटक है—निःशब्द निःस्पन्द
क्या तुम इसे सुन रहे हो ?

कौरव-समुद्र नहीं, अखूट चक्र नही
त्राता से अपने बस एक ही अवतार दूर
पृथ्वी की डूबन नही

कोई और प्रहसन है यह
ऐसा तो नहीं कहीं—
आत हो मुझसे अधिक
और दरार यहाँ नही
वहाँ अतरिक्ष मे
पाटने को जिसे तुम्हें
रचना पडा हो स्वय
अपना महाप्रस्थानिक ! ! !

टकटकी बाँधे वह देखता था मुझे
नही ! अपने उस अग्रज को—
ठिठका था क्षण भर जो
उसे लडखडाते देख
और दूसरे ही क्षण आगे वढ गया था
किस इच्छा मृत्यु से जीवन-दान पाने तब
भेजा था तुमने उसे
वह जो स्थितप्रज्ञ था

सम्बन्धहीनता की हदा को छूता हुआ
कैसा सम्बन्ध है यह
मरने नही देता जो
स्वर्ग और पथ्वी से खाली और उजड़े हुए
इस अक्षय पात्र के
अतल मे गडे हुए
तिनके से भ्रम को भी
झरने नही देता जो

खण्ड दो दूसरा युगान्त

किसने पुकारा किसे ? सन्नाटा कैसा यह
अंधकार चौंध भरा

कौंधा था कोई स्वर पहचाना अभी-अभी
नहीं ! यहाँ कोई नही
पटाक्षेप सब कुछ पर

सब कुछ पर जमा हुआ अट्टहास
सब कुछ का

किसे खोजते हो तुम
खड्ड सी खुली और बर्फ मे घुली
इन आँखो मे देखो   अरे, तुम्हारे अवाक्
चित्रपट चेहरे पर
कैसी पहचान उभर रही है
ऊपर खींचना तो दूर
और गहरे गाड रही है
हजारो साल पुराने इस खड्ड मे
जहाँ और गहरे गढने की
गुंजाइश ही नहीं बची है।

सच, तुम्हारी आँखें क्यों विस्फारित हैं विस्मय से
विस्मय होना चाहिए मुझे
कि, शताब्दियों मे अनवरत
भूस्खलन के बावजूद
कैसे तुम पहुँच गए ठीक उसी जगह

जहां पिछली घटनाओं का
एक भी चिह्न शेष नहीं

कहीं ऐसा तो नहीं
वहां भी खडड खुल गया
शिखर के बीचोबीच
उसी ने तुम्हें निगल लिया
और भीतर ही भीतर चक्कर खाते भटकते तुम
आ पहुंचे मुझ तक यहां

क्या हुआ ? कुछ तो कहो
तुम तो सुना, शिखर क्या
नक्षत्रों को भी लांघ चुके थे

यह भी सुना था
कि, स्वर्ग तुम्हें नहीं जंचा
स्वर्ग से नरक और फिर नरक से स्वर्ग की
यात्रा वह कैसी रही

कुछ तो बताओ मुझे
अपनी अर्द्धांगिनी को
शताब्दियों के आर पार बिंधे हुए मुझसे तुम
क्या चाहते हो आखिर
क्या है मेरे पास अब
जो मैं तुम्हें सौंप दूं
और अपने साथ साथ
तुम्हें भी मुक्त कर सकूं
मैं तुम्हारी मुक्ति !
कैसी विडम्बना है, ओ मेरे यमराज !

सिर्फ एक टांग पर लड़खड़ाते देख तुम्हें
हंसी नहीं आती मुझे
गले पड़े पृथ्वी पर मेरे अंग-अंग से
लिपटा किसका हाहाकार
हंसने नहीं देता मुझे

नहीं चाहती मैं किसी घटना से बाँधना तुम्हें
मुझे तुम्हें बाँधना नहीं
मुझे सिर्फ जोड़ना है
एक घट को दूसरे स

हँस ही लेने दो
याद नहीं कब हँसी थी
आखिरी हँसी भी शायद
जमी पड़ी हो यहीं कहीं

नहीं ! नहीं ! नहीं ! मैं उस पिछड़े युगान्त की
शिकायतें दोहराने नहीं आई तुम्हारे पास
चोटियाँ तुम्हारी ये
टहलते देखा जहाँ नंगे पैर मैंने तुम्हें
अक्सर आधी रात गए
जानते हो क्या हैं य ?

बदले की आग की जमी हुई लपटें !!!
हाँ धमराज, यहाँ मैं भी तुम्हारी तरह
हो गई हूँ रूपान्तरित
दूसरा जन्म लेने को एक युग काफी नहीं ?
चौंको नहीं धमराज !
प्रलय अभी दूर है
पर इतना दूर भी नहीं, कि
बरसों इत्मीनान से तुम्हें
सोचने की मोहलत दे

चौंको नहीं धमराज
आओ, पिघलाओ मुझे
तुम अपनी शान्ति में
बेहद अशान्त हो
और मैं अपने युद्ध मे
पड़ी हूँ यहाँ शिलीभूत

आओ पिघलाओ मुझे धमराज !
फिर से जगाओ उसे
पुरखो की गगा को
स्वग रथ पर चढने का स्वांग तुमने खूब किया
मैं तो यही जानती थी
पितृलोक घूम के तुम वापस यहीं आओगे

इसी अनाथालय मे
जो पथ्वी का नही, अब
हमारा मानदड है

किसने कहा था तुम्हें—स्मरण करो धमराज
"नारायण से भी पहले जिसकी प्रवृत्ति हुई
अवहेलना मत करो उस राजधम की"
नारायण के सामने ही
उसने कहा था तुम्हे—
"धम एक बार नही, कई बार हुए हैं नष्ट
हर बार उबारा है उन्ह राजधम ने"

स्मरण करो धमराज
इस बार तुम्हें पहले से भी
दुर्दान्त जुआडियो से लेनी होगी टक्कर

इस बार दांव पर तुम्हारा हक ही नहीं लगा
इस बार दांव पर
लगे हैं स्वय नारायण

इस बार तुम्हारे शत्रु
युधिष्ठिर बनकर आए हैं
भेष-परिवतन मे वे तुमसे बढकर कुशल हैं

और उनके देवता दूसरे हैं
वे मत्यु को नही मानते
और अवध्य बनने के लिए
उन्हें तपने की जरूरत नहीं

तुम्हारा सत्याग्रह—जो एक पोथी तक नहीं जुटा सका
भटों और भाटों की भीड़ कैसे जुटाएगा
सावधान, धर्मराज ! इस बार तुम्हारे विरुद्ध
कौरव ही नहीं,
होंगे पांडव और यादव भी

कोई अवतार नहीं करेगा हस्तक्षेप
तुम्हारे हित में इस बार

तब जो सारथी था
अब केवल साक्षी है
कदाचित् वह भी नहीं

हाँ यह संभव है
भूल न हो इस बार पहचानने में तुमसे
सहोदर सूतपुत्र को
दे दे वह तुम्हारा साथ
अलावा मेरे, और
इस
अक्षय
पात्र
के

बारह वर्ष चौदह वर्ष
शताब्दियाँ
सहस्राब्द

कब तक पुकारूँ तुम्हें
ओ मेरे धर्मराज !

तुम्हारी शान्ति वंध्या है
और मेरी कोख में
एक नया युद्ध सुलग रहा है
धर्मयुद्ध, धर्मराज !

पृथ्वी की चौपड पर
इससे बडा दांव
मनुस्मति के इतिहास मे
कभी नही खेला गया

तुम पुराने खिलाडी हो
चुनौती यह, तुम नही तो
और कौन झेलेगा !

तुम्हारी टेक थी
कि तुम इस वरुणालय को
करुणालय मे बदलोगे

फिलहाल—हम दोनो ही
हिचकोले खाते हुए
स्वग और नरक के बीच
एक अनाथालय मे हैं

निकलो
निकल सको तो
देखो यह दूसरा युगान्त
जहा युद्ध और शान्ति की
बदल चुकी है परिभाषा

□□